स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता

*भवेश कुमार**

स्वामी विवेकानंद ने भारतीय शिक्षा दर्शन को एक नई दिशा देने का प्रयास किया है। उनका शिक्षा दर्शन अद्वैतवाद से अनुप्राणित है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता विद्यमान है। वे आत्मज्ञान को विशेष महत्व देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का मूल तत्व ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग करना है। वे मानव के समग्र विकास के लिए वेदान्तयुक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था का क्रियान्वयन चाहते थे। स्वामी जी ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म और विज्ञान, वर्तमान और अतीत का समन्वय किया है। वे चाहते थे कि सीखने की प्रक्रिया सहज, स्वाभाविक और बिना किसी दबाव के होनी चाहिए और शिक्षक का कार्य सीखने की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर कर उचित वातावरण का सृजन करना है। स्वामी विवेकानंद की शिक्षा की संकल्पना और उनके द्वारा सुझाए गए विकल्पों को साकार रुप देकर शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की ज़रुरत है।

बहुआयामी प्रतिभा के धनी, अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध आध्यात्मिक संत, मानव कल्याणोंमुखी भारतीय दर्शन के प्रचारक, राष्ट्र के नवनिर्माण हेतु विशुद्ध अंत:करण से दृढ़ संकल्पित, व्यापक मानवीय संवेदना से युक्त, युवाओं के ऊर्जा के अजस्र स्रोत, राष्ट्रीय चेतना के अभिप्रेरक, दीन दु:खियों के मसीहा, आधुनिक भारत के महान् मानवतावादी संत स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कोलकाता के शिमलापाली के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। स्वामी जी के पूर्वाश्रम का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कोलकाता उच्च न्यायालय के प्रख्यात अधिवक्ता तथा अँग्रेजी और फ़ारसी के विद्वान थे। इनकी माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी धर्मिक गृहणी थीं। इनके पितामह श्री दुर्गाचरण दत्त फ़ारसी, संस्कृत तथा कानून के विशेषज्ञ थे,

*बी-454, एन. एच. 5, एन.टी.पी.सी. कम्पाउण्ड, रिहन्द नगर, सोनभद्रा-231223

किंतु उन्होंने जीवन के पूर्वाह्न में ही 25 वर्ष की अल्पायु में संसार से विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लिया था।

ज्ञान एवं अध्यात्म की पारिवारिक विरासत, गुरु श्री राम कृष्ण परमहंस का पवित्र सान्निध्य एवं असीम अनुकंपा, प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन का प्रभूत ज्ञान, स्वयं की आध्यात्मिक अनुभूति, भारत का गौरवमय अतीत, पिता की मृत्यु के पश्चात् पारिवारिक दारिद्रय की सहानुभूति, परिब्राहजक रूप में भारत तथा विश्व के अनेक देशों के भ्रमण के समय प्रत्यक्षत: अनुभूत भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विपन्नता, जापान की औद्योगिक प्रगति, उच्च जीवन स्तर, शिकागो का विपुल ऐश्वर्य एवं अन्य पाश्चात्य देशों की गवेषणात्मक प्रतिभा आदि समवेत रूप से स्वामी जी के समग्र चिंतन के प्रमुख अभिप्रेरक तत्व रहे हैं।[1] स्वामी जी ने स्वयं भारत–भ्रमण के समय अपनी आँखों से भयानक निर्धनता, अज्ञानता, बुभुक्षित नग्नबच्चे, अर्द्धनग्न स्त्री–पुरुष, निर्धन एवं निरक्षर ग्रामीण, अवैज्ञानिक खेती, सिंचाई के साधनों का अभाव, गाँवों में अस्वच्छता, अत्यंत निम्न जीवन स्तर, धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ आदि के रूप में विपन्न भारत का दर्शन किया। लोग निर्धनता तथा अज्ञानता के कारण पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे थे।[2] इस अमानवीय स्थिति को देखकर मानवीय संवेदना से युक्त स्वामी जी का हृदय अत्यंत द्रवित हुआ। उन्होंने अपनी अंत:प्रेरणा से आत्ममुक्ति के स्थान पर राष्ट्रमुक्ति–राष्ट्र को निर्धनता एवं अज्ञानता से मुक्ति दिलाने, दीन–दु:खियों के उद्धार हेतु कार्य करने तथा राष्ट्र के पुनर्निर्माण में संलग्न होने का संकल्प लिया और आजीवन मानवता की सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया। स्वामी जी का शैक्षिक दर्शन भी प्रमुखत: इसी बिंदु से अभिप्रेरित है। उनका शैक्षिक चिंतन पूर्ण मानव के निर्माण हेतु व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की अवधारणा पर आधरित है जिससे मनुष्य जीवन में अभ्युदय (लौकिक अभ्युत्थान) एवं नि:श्रेयस (आध्यात्मिक प्रगति) की सिद्धि कर आत्मोन्नति के साथ समृद्ध राष्ट्र के निर्माण में सहभागी बन सकें।

स्वामी जी का शैक्षिक दर्शन मूलत: अद्वैत वेदांत से अनुप्राणित हैं। अद्वैत वेदांत के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी दैवीय है। इस धरा पर ईश्वर जीव रूप में ही अस्तित्वमान है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का कोई दूसरा रूप नहीं है। जीवन का लक्ष्य इस दिव्यता या ब्रह्म भाव का प्रकाशन है।[3] कर्म और ज्ञान (शिक्षा) इस दिव्यता या पूर्णत्व की अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन हैं। स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों के भ्रमण में जीवनोपयोगी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की भौतिक उपलब्धियों, लोगों के उच्च जीवन स्तर पर साधारण से साधारण व्यक्तियों के सुखमय जीवन को देखा था। उन्होंने भारत की निर्धनता व पिछड़ेपन का मूल कारण यहाँ विद्यमान व्यापक अज्ञानता को स्वीकार किया। वह भारत में प्रचलित तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से दु:खी थे। क्योंकि वह देशवासियों

[1]स्वामी निखिलानन्द, *विवेकानंद ए बायोग्राफी,* पृ. 89, 110.

[2]तदैव पृष्ठ 79–96.

[3]*दि मेसेज आफ़ विवेकानंद अद्वैत आश्रम* 5, डेही इण्टैली रोड कोलकाता, ग्यारहवाँ संस्करण, अगस्त 2002 पृ. 35.

को आत्मनिर्भर बनाने में असफल थी। लोगों के चरित्र निर्माण एवं मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक नहीं थी। देश के शिक्षण संस्थान विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पुस्तकीय ज्ञान के तथ्यों को भर रहे थे और उनमें विषयों के रटने की प्रवृत्ति में अभिवृद्धि कर रहे थे। शिक्षण संस्थान रटे हुए विषयों के परीक्षण के मात्र संस्थान बने हुए थे। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का सार मन की एकाग्रता प्राप्त करना है, तथ्यों का संकलन नहीं। शिक्षा का मूल तत्व ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग करना है। मन की एकाग्रता से विषयों को समझने और उसे आत्मसात् करने में सरलता होती है। स्वामी जी मानसिक एकाग्रता के लिए छात्र जीवन में ब्रह्मचर्य जीवन का पालन अनिवार्य मानते हैं क्योंकि ब्रह्मचर्य से बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। मन तथा इंद्रियाँ नियंत्रित होती हैं। स्मृति शक्ति का विकास होता है। प्रबल कार्यशक्ति की अभिवृद्धि होती है। मानसिक एकाग्रता बढ़ती है। मन की एकाग्रता के विकास से विद्यार्थी अतिशीघ्र विषय वस्तु को ग्रहण कर लेता है। प्राचीन गुरुकुलों में ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सर्व शास्त्रविद्, धमर्ज्ञ, सच्चरित्र, सद्गुरु के सान्निध्य में रहते हुए विद्या विनय संपन्न, चरित्रवान, श्रमशील भावपूर्ण आदर्श नागरिक के रूप में उद्भूत होते थे। स्वामी जी के अनुसार आदर्श शिक्षा वह है जिससे हम जीवन का निर्माण कर सकें, पूर्ण मानव बन सकें और ज्ञान को आत्मसात कर जीवन में प्रयोग कर सकें। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है—

''यदि हम मूल्यवान पाँच ही भावों को आत्मसात कर अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर सकें तो हमारी वह शिक्षा उस व्यक्ति की शिक्षा की अपेक्षा बहुत अधिक है जिसने पूरे पुस्तकालय को ही कण्ठस्थ कर लिया है।''[4]

शिक्षा को परिभाषित करते हुए स्वामी जी कहते हैं–''शिक्षा का अर्थ है, उस पूर्णता को व्यक्त करना जो सब मुनष्यों में पहले से विद्यमान है।''[5] ज्ञान मनुष्य में अंतर्निहित है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है। विश्व का असीम पुस्तकालय हमारे मन में ही विद्यमान है। संसार ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है वह मन से ही निसृत है। एक अबोध बालक में भी ज्ञान का समस्त भण्डार निहित है। उस प्रच्छन्न ज्ञान को अनावृत करना है। बालक को स्वयं अपने अंदर निहित ज्ञान का अंवेषण करना है। आचार्य का कार्य छात्र को जागृत करना है, प्रबोधित करना है। आचार्य ज्ञान के अन्वेषण में उद्दीपन का कार्य करता है, छात्र को प्रेरणा प्रदान करता है, शैक्षिक वातावरण का सृजन करता है, ज्ञानार्जन में आने वाली बाधाओं का निवारण करता है।

स्वामी जी शिक्षा के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि शिक्षा जीवन का निर्माण करने वाली (Life Buliding), मनुष्य बनाने वाली (Man Making), चरित्र गठन करने वाली (Character Making) तथा विचारों को आत्मसात्

[4]स्वामी विवेकानंद, शिक्षा (हिन्दी अनुवाद) श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ. 5.
[5]स्वामी विवेकानंद. शिक्षा पृ. 6

कर जीवनोपयोगी बनाने वाली होनी चाहिए।[6] शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र निर्माण हो, जीवन में मानवीय मूल्यों का समावेश हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो, मनुष्य आत्म निर्भर बने और उसमें अपने पैरों पर खड़ा होने की सामर्थ्य उत्पन्न हो सकें। वह शिक्षा जो व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना, मानव सेवाभाव तथा परिस्थितियों का सामना करने के लिए अदम्य साहस और आत्म विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकती, वह शिक्षा नहीं है।[7] स्वामी जी मानव के समग्र विकास के लिए वेदांतयुक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था का क्रियान्वयन चाहते थे।[8]

स्वामी जी स्त्रियों एवं जनसामान्य विशेषत: दीन-दु:खियों, निर्धनों, असहायों एवं समाज के निचले पयदान पर खड़े व्यक्तियों की शिक्षा के प्रति विशष संवेदनशील थे। उनके अनुसार देश के पतन तथा पिछड़ेपन का प्रमुख कारण स्त्रियों की अशिक्षा है। वर्तमान समाज में स्त्रियों को सम्मान प्राप्त नहीं है। उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अवसर सुलभ नहीं है। परिवार में बालक की शिक्षा के प्रति लोग सचेत होते हैं किंतु बालिका की शिक्षा को महत्व नहीं देते। यह देश के लिए अत्यंत दुर्भाग्य का विषय है। समाज स्त्री-पुरुष दोनों से मिलकर बना है। दोनों की शिक्षा पर ही देश का पूर्ण विकास संभव हैं। पक्षी आकाश में मात्र एक पंख से उड़ नहीं सकते। उसी प्रकार देश का सम्यक् उत्थान मात्र पुरुषों की शिक्षा से संभव नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर सुलभ होना चाहिए। प्राचीन भारत में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। ज्ञान के सर्वोच्च स्रोत वेद मंत्रों के दर्शन में ऋषि पत्नियाँ भी सहभागी होती थीं। ऋषि वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती, सीता, सावित्री, माँ शारदा देवी(श्री रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक सहधर्मिणी) जैसी-विदुषी स्त्रियों का पुनरोदय आवश्यक है। यह स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने पर ही संभव है। इस प्रकार स्वामी जी महिलाओं के सशक्तिकरण की आधुनिक अवधारणा के जनक हैं। स्वामी जी जनसाधारण प्रमुखत: निर्धन अपवंचित एवं पिछड़े वर्ग में व्याप्त निरक्षरता से बहुत द्रवित थे। उनके अनुसार सभी प्राणी ईश्वर की संतान हैं। समाज में समृद्ध एवं उच्च वर्ग का ही शिक्षा पर आधिपत्य नहीं होना चाहिए। बिना इसके राष्ट्र का पुनर्निमाण असंभव है। यदि निर्धनता के कारण निर्धनों के बच्चे रोज़ी-रोटी के कार्य में संलग्न होने के कारण विद्यालय नहीं जा सकते तो विद्यालय को स्वयं उनके पास जाना होगा। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है-''*यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं जा सकता तो मुहम्मद को ही पहाड़ के पास जाना होगा।*''[9]

---

[6]स्वामी भास्केश्वरानन्द (प्रकाशक) : *विवेकानंद संचयन* द्वितीय संस्करण पृ. 184, एवं प. रामचन्द्रन, बसन्त राम कुमार, *एजुकेशन इन इण्डिया* पृ. 112, नेशनल बुक ट्रस्ट भारत 2005.

[7]*विवेकानंद*, राष्ट्र को आह्वान पृ. 33

[8]तदैव पृष्ठ 35.

[9]*स्वामी विवेकानंद*, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 50 एवं विवेकानन्द, राष्ट्र को आह्वान पृ. 35.

स्वामी जी की यह अवधारणा सर्वशिक्षा अभियान, सबके लिए शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, वयस्क शिक्षा आदि की मूल स्रोत कही जा सकती हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने एक शिक्षा शास्त्री की दृष्टि से शिक्षा के पाठ्यक्रम पर क्रमबद्ध रूप से विचार नहीं किया है। वस्तुत: स्वामी जी महान मानवतावादी आध्यात्मिक संत थे। मानव का कल्याण ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मानव के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास था। उनके समग्र चिंतन, लेखों, प्रवचनों, संदेशों, उद्‌बोधनों एवं ग्रंथों में जीवन के समग्र विकास से संबंधित अनेक विषय शिक्षा के पाठ्यक्रम के रूप में गृहीत किए जाते हैं। स्वामी जी में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्या का अद्‌भुत समन्वय था। जहाँ वह समृद्ध भारतीय धर्म-दर्शन आध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान एवं मूल्यपरक उदारमना भारतीय संस्कृति की संवाहिता प्राच्य विद्या के उत्पाद थे वहीं उनमें पाश्चात्य दर्शन, इतिहास आदि का प्रभूत ज्ञान तथा भौतिक सुख प्रदान करने वाली यूरोपीय देशों के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के उत्कर्ष की पर्याप्त अनुभूति थी। अत: वह मानव के पूर्ण विकास के लिए प्राच्य विद्या तथा पाश्चात्य आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का समन्वय चाहते थे। उनकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में जीवन के निर्माण से संबंधित सभी विषय समाहित थे। वह भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुंबकम्', मानवीय मूल्यों, वैश्विक मानव धर्म, आध्यात्मिक चेतना, देशभक्ति आदि से संबंधित वेद मंत्रों, उपनिषदों, वेदांतों के व्यावहारिक तत्वों, धर्मिक शिक्षा के अंतर्गत धर्म के मानवीय तत्वों, धर्म के क्रियात्मक स्वरूप, महापुरुषों के चरित्र निर्माणक उदात्त प्रेरणादायक प्रसंगों, भाषा के अंतर्गत संस्कृत वाङमय, मातृभाषा, मातृभाषा में दक्षता के बाद विदेशी भाषा, प्राचीन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, कृषि, पशुपालन, उद्योग, संगीत, कला, योगासन, प्राणायाम, खेल-कूद आदि विषयों का अध्ययन – अध्यापन विद्यालयों में चाहते थे। वह स्त्रियों की शिक्षा के पाठ्यक्रम के अंतर्गत धर्मिक शिक्षा चरित्र गठन, ब्रह्मचर्य पालन, इतिहास और पुराण, गृह व्यवस्था, कला-कौशल, गृह विज्ञान, शिशु पालन, शिशु शिक्षा आदि विषयों का समावेश चाहते थे।[10] इसके अतिरिक्त वह समय-समय पर व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में परिवर्तन भी चाहते थे। श्री सुभाष चंद बोस के शब्दों में –

> *''स्वामी जी ने अपने शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म और विज्ञान, वर्तमान और अतीत का समन्वय किया है।''*

स्वामी जी के अनुसार मनुष्य में पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। बालक में ज्ञान अंतर्निहित है। उसमें ज्ञान के स्वत: विकास की शक्ति विद्यमान है। अत: शिक्षण विधि के अंतर्गत शिक्षा का कार्य एक सहायक का है। जिस प्रकार किसी वृक्ष या पौधे के लघुबीज में स्वत: विकास के तत्व विद्यमान होते हैं। कृषक मात्र उचित भूमि तैयार कर बीज़ारोपण करता है, उचित उर्वरक, जल, वायु, प्रकाश आदि की व्यवस्था करता है। पौधे की

[10] *स्वामी विवेकानंद*, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 43.

सुरक्षा के लिए उसके, चारों ओर सुरक्षा का घेरा तैयार करता है, पौधा स्वयं अपने अंतर्निहित विकास तत्व से विकसित होता है। यही कार्य बालक की शिक्षा में आचार्य का है क्योंकि बालक में ज्ञान स्वयं अंतर्निहित है। अत: सीखने की प्रक्रिया सहज स्वाभाविक और बिना किसी दबाव के होनी चाहिए। ज्ञानार्जन में बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। आचार्य का कार्य सीखने की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। वातावरण का सृजन करना है, सीखने के लिए प्रेरित करना है।[11] शिक्षक को विषय का उत्कृष्ट ज्ञान, पवित्र जीवन, आदर्श चरित्र छात्र के प्रति सहानुभूति, शिक्षण के प्रति समर्पण, सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरक होता है। अत: शिक्षक का उच्चतम आदर्श सीखने की प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है।

स्वामी जी कालजयी महापुरुष हैं। कालजयी महापुरुषों के चिंतन पुराने नहीं पड़ते। सतत् प्रासंगिक एवं मार्गदर्शी बने रहते हैं। राष्ट्र के पुनर्निमाण एवं देशवासियों के समग्र कल्याण हेतु स्वामी जी के शिक्षा विषयक विविध चिंतन–पूर्णमानव बनाने वाली शिक्षा की अवधरणा, जीवन के निर्माण हेतु व्यापक पाठ्यक्रम, प्रभावी ज्ञानार्जन के लिए मानसिक एकाग्रता का विकास, सीखने की प्रक्रिया में बालक की स्वतंत्रता एवं सहभागिता, ज्ञानार्जन में बालक की सहज स्वाभाविक प्रवृति, अनुचित दबाव का अभाव, स्वानुशासन का विकास, शिक्षण में प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रयोग, शिक्षक का उच्चतम आदर्श, पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए शिक्षा प्राप्ति के अवसर की उपलब्धता, समाज के निर्धन, अपवंचित एवं पिछड़े वर्ग की शिक्षा के प्रति विशेष संवेदनशीलता, आज भी शिक्षाविदों के चिंतन के विषय हैं। महात्मा गाँधी की 'बालक एवं मानव के शरीर' मन एंव आत्मा का सर्वोत्तम विकास' पेस्टालॉजी की मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील उत्थान विषयक शिक्षा की अवधारणाएँ स्वामी जी की मानव की पूर्णता की अभिव्यक्ति वाली शिक्षा की अवधारणा से प्राय: साम्यता रखती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उद्घोषित शिक्षा के उद्देश्य विषयक बिंदु– विषय का ज्ञान (Learing to Know), प्राप्त ज्ञान को क्रियान्वित करना (Learing to do),आत्मसात् ज्ञान के अनुसार आचरण करना (Learing to be) एवं मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त होना (Learing to live together)। स्वामी जी की जीवन में आत्मसात् करने वाली शिक्षा, जीवन निर्माण करने वाली शिक्षा, चरित्र गठन करने वाली शिक्षा, मानवीय गुणों का विकास करने वाली शिक्षा की अवधारणा के तद्रूप ही हैं। कदाचित जीवन का निर्माण करने वाली, पूर्ण मानव बनाने वाली, चरित्र उत्पन्न करने वाली, व्यक्ति की दिव्यता की अनुभूति कराने वाली, मानव मूल्यों का जीवन में समावेश कराने वाली, मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाने वाली स्वामी जी की शिक्षा की संकल्पना को आज भी हम साकार नहीं कर सकें हैं। उनका शिक्षा दर्शन आज एक शताब्दी के बाद भी हमारे लिए आदर्श और प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है और उसे मूर्तरूप देने के लिए हम सतत् प्रयत्नशील हैं।

[11] *स्वामी विवेकानंद,* शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 10–11.